IJAER/ May-June 2023/Volume-12/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

भारतीय संविधान और सामाजिक न्याय

लाल चन्द मीणा

सहायक आचार्य (राजनीति विज्ञान)

एस बी डी राजकीय महाविद्यालय सरदारशहर (चुरू)

एक न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था के निर्माण को स्पष्ट तौर परभारत के संविधान की प्रस्तावना में दर्शाया गया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा तथा पूजा की स्वतंत्रता, स्तर तथा अवसर की समानता सुनिश्चित करना तथा सभी नागरिकों के बीच प्रोत्साहित करना– प्रस्तावना के इन शब्दों से स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्र भारत में नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व प्राप्त करने के लक्ष्य को सुनिश्चित किया। सामाजिक न्याय के संदर्भ में संविधान निर्माताओं ने सहभागी लोकतंत्र के आदर्शों, नागरिकों के अधिकारों की गारंटी, पंथनिरपेक्षता समतावादी, सहकारी संघवाद तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका को संविधान में शामिल किया। संविधान सभा में एक गुट ने सामाजिक न्याय की व्याख्या पश्चिमी उदारवाद के संदर्भ में की। लेकिन कुछ सदस्यों की मान्यता थी कि जब तक भारतीय समाज में शोषित पीड़ित वर्गों की आकांक्षाओं का संतुष्टिकरण नहीं होगा तब तक सामाजिक, राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन होगा। स्वतंत्रता के समय भारत की गरीबी मिटाना तथा सामाजिक न्याय अति महत्वपूर्ण समस्याएं थी। सभी इन समस्याओं से भलीभांति परिचित थे। अतः मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक तत्त्वों में इनको मिटाने का प्रावधान किया गया है। संविधान में उल्लिखित सामाजिक आर्थिक न्याय के प्रावधानों से प्रतीत होता है कि संविधान मूल रूप से उदारवादी प्रवृत्ति का होने के बावजूद अन्य देशों के संविधानों से हटकर भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए एक दृष्टिकोण तथा दिशा उपलब्ध कराने हेतु कुछ लक्ष्य निर्धारित करने का प्रयास किया।

भारत में जिस प्रकार के लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना की गई है उससे यह अपेक्षित है कि देश में सामाजिक और आर्थिक न्याय स्थापित हो, जिसमें समाज का कमजोर तथा दलित वर्ग किसी भी रूप में दीन–हीन न रहे और शोषण का शिकार न हो। सामाजिक न्याय की आवश्यकता है कि समाज में सुविधाहीन वर्ग, विशेष रूप से गरीबों के बच्चों, महिलाओं और कमजोर वर्ग के व्यक्तियों की सहायता कर उन्हें अपनी सामाजिक, आर्थिक असमर्थताओं को दूर करने और अपने जीवन स्तर में सुधार करने योग्य बनाया जाए और शोषणविहीन समाज की स्थापना की जाए। सामाजिक न्याय का अभिप्राय है कि मनुष्य–मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न हो। हर व्यक्ति को अपनी शक्तियों के समुचित विकास के समान अवसर उपलब्ध हो, किसी व्यक्ति का किसी रूप में शोषण न हो। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो। आर्थिक सत्ता समाज के कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित न हो, समाज का कमजोर वर्ग अपने को असहाय महसूस न करें। दुर्गा दास बसु के अनुसार संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए विशेष उपबंध करके ही संतोष नहीं किया जा सकता। अनुसूचित जातियां तो सामाजिक रूप से दलित लोगों का एक विशेष वर्ग है, संविधान में साधारणतया पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए और उनकी दशा को सुधारने के लिए विशेष

प्रबंध किए गए हैं। सामाजिक न्याय की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि देश की राजसत्ता अपने कृत्यों द्वारा समतायुक्त समाज की स्थापना का प्रयास करें। सामाजिक न्याय के इस मूलभूत मानवीय सिद्धांत को संविधान में अनेक रूपों में मान्यता मिली है।

संविधान सभा को एक ऐसे संविधान के प्रारूप को तैयार करने की जिम्मेदारी थी जिसमें एक लोकतांत्रिक सरकार का ढांचा हो, साथ ही इसमें एक ऐसा संस्थागत ढांचा हो जो सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की गति को तेज कर सकें एवं जनमानस की सहभागिता को प्रोत्साहित करें। संविधान सभा में नेहरू ने कहा "इस सभा का प्रथम कार्य एक नए संविधान के माध्यम से भारत को स्वतंत्र करना, भूखी जनता को रोटी देना एवं नंगे लोगों को कपड़ा उपलब्ध कराना तथा प्रत्येक भारतीय को उसकी क्षमता के अनुरूप अपना विकास करने के पूर्ण अवसर प्रदान करना है।"

एक न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के उद्देश्य को संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट तौर पर दर्शाया गया है जो इस प्रकार हैः–

हम भारत के लोग भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र में विधिवत तौर पर गठित करने का संकल्प करते हैं और इसके सभी नागरिकों के लिए न्याय– सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक, स्वतंत्रता– विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा एवं पूजा की; समानता– स्तर एवं अवसर की सुनिश्चित करना और सभी नागरिकों के बीच प्रोत्साहित करना, भ्रातृत्व तथा व्यक्तिगत गरिमा को सुनिश्चित करना और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता को बनाए रखना।

प्रस्तावना के इन शब्दों से स्पष्ट है कि संविधान निर्माताओं ने भारत में नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व प्राप्त करने के लक्ष्य को सुनिश्चित किया है। एम. एल. सिंघवी के अनुसार, ये तीनों अवधारणात्मक लक्ष्य हमारी संवैधानिक व्यवस्था के मौलिक आधार है। यह इसकी मूल्य व्यवस्था को जीवित रखते हैं एवं इसकी संस्थाओं एवं माध्यमों को सजीव करते हैं। यह न केवल राज्य के प्रयासों एवं कार्यों को प्रेरित करते हैं अपितु समाज एवं व्यक्तिगत नागरिकों को भी प्रयासरत रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

संविधान के उद्देश्यों का उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है, जिसमें सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा एवं पूजा की स्वतंत्रता स्तर तथा अवसर की समानता, इनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धांतों में की गई है। प्रत्येक व्यक्ति एक मानव के रूप में कुछ अधिकारों का उपभोग करने का अधिकारी होता है ऐसा मूल अधिकारों को संविधान स्वीकार करता है। इस प्रकार के अधिकारों का उपयोग किसी बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक की इच्छा पर निर्भर नहीं करता है। संवैधानिक उपचार के अधिकारों की व्यवस्था भी संविधान में है जिसके तहत कोई भी पीड़ित व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय में शरण ले सकता है। अस्पृश्यता की समाप्ति, शोषण के विरुद्ध अधिकार और समता का अधिकार सामाजिक न्याय की प्राप्ति से संबंधित है। भारत जैसे विकासशील देशों में लोकतंत्र जनसाधारण के लिए तभी अर्थ पूर्ण हो सकता है जब इसके साथ सामाजिक परिवर्तन भी हो। यद्यपि संविधान द्वारा सुरक्षित मूल अधिकार असीमित नहीं है अर्थात मूल अधिकार स्वयं में मौलिक होते हुए भी राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सामूहिक लोकहित से ऊपर नहीं है। राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में मूल अधिकारों पर

प्रतिबंध लगाने का प्रावधान है। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि जो अपने मूल अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं वह अपने उत्तरदायित्व को भी निभाए।

सामाजिक हित में धन के केन्द्रीकरण को सीमित करना, बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा, जिस का बाद में मूल अधिकारों में भी प्रावधान कर दिया गया है, जैसे कार्यक्रमों को नीति निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया है। नीति निर्देशक तत्व राज्य को समाज सेवा का दायित्व सौंपते है। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य अधिक प्रभाव पूर्ण रूप में एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था तथा सुरक्षा द्वारा जिसमें आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय की प्राप्ति हो, जनता के हित एवं विकास का प्रयास करेगा और राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक संस्था को इस संबंध में सूचित करेगा। यह स्पष्ट है कि ये निर्देश राज्य को समाज सेवा का दायित्व देते हैं जिसके अंतर्गत राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि समान रूप से स्त्री तथा पुरूष सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त हो सके। समुदाय की भौतिक संपति का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार किया जाए कि सामूहिक हित की सर्वोत्तम सिद्धि हो सके। अर्थव्यवस्था का संचालन ऐसा हो कि उत्पादन के साधनों का अहितकारी केंद्रीकरण न हो सके। पुरुषों तथा स्त्रियों के समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था हो। श्रमिक स्त्री–पुरुषों के स्वास्थ्य एवं शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न किया जाए। आर्थिक कारणों से मजबूर होकर नागरिकों को ऐसे कार्य न करने पड़े जो उनकी आयु एवं शक्ति के अनुकूल न हो। बचपन तथा किशोरावस्था के शोषण से संरक्षण किया जाए। यद्यपि नीति निर्देशक तत्व मूल अधिकारों की भांति न्यायालय में वाद योग्य नहीं है फिर भी देश का शासन संचालित करने के लिए इन्हें आधारभूत घोषित किया गया है।

ग्रेनविले ऑस्टिन का कहना है कि भारतीय संविधान एक सामाजिक दस्तावेज है। इसके अधिकतर अनुच्छेद या तो सामाजिक क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक परिस्थितियों की स्थापना करते हैं या इस क्रांति की गति को और अधिक तीव्र करने का प्रयास करते हैं।

संविधान निर्माता बहुत से क्षेत्रों में न्याय के विचार के प्रति चिंतित थे। ये क्षेत्र थेः व्यक्तिगत अधिकार, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, पीड़ित तथा शोषितों का उत्थान आदि। यद्यपि इनके लिए मूल अधिकारों, नीति निर्देशक तत्त्वों, निर्वाचन, कानून का शासन आदि की व्यवस्था की गई तथापि संविधान निर्माताओं को यह शंका थी कि व्यक्ति, समूहों तथा राज्य की सुरक्षा के लिए उचित तंत्र के बगैर यह सब आदर्श मात्र बने रह सकते हैं। अतः इसके लिए संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की गई। न्यायपालिका के पास व्यापक शक्तियां एवं उत्तरदायित्व है और साथ ही सांविधानिक ढांचे के तहत इन्हें व्यापक सम्मान भी प्राप्त है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय से संबंधित उपर्युक्त व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं ने सहभागी लोकतंत्र के आदर्शों, नागरिकों के अधिकारों की गारंटी, पंथनिरपेक्षता, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका को संविधान में शामिल किया गया है। भारत में गरीबी को मिटाना और सामाजिक न्याय प्राप्त करना सबसे महत्वपूर्ण समस्याएं थी। संविधान सभा में आदर्शवादी और रूढ़िवादी दोनों ही वर्ग इन समस्याओं को भलीभांति जानते थे और उनका यह भी विचार था कि सर्वाधिकारवादी तरीकों से किया गया परिवर्तन काफी दुखद

होगा। इससे एक शोषण के अंत से दूसरे शोषण के प्रारंभ होने की बहुत संभावना थी। अतः वह जनतांत्रिक साधनों तथा समझोतों द्वारा परिवर्तन के पक्षधर थे।

समझौते और समायोजन की प्रक्रिया ने सामाजिक न्याय की विचारधारा के एक ऐसे दस्तावेज को उत्पन्न किया जो विरोधाभासों से परिपूर्ण होना स्वाभाविक था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भी इन विरोधाभासों को स्वीकार करते हुए कहा कि 26 जनवरी 1950 को हम एक विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हम समान होंगे परंतु सामाजिक और आर्थिक अधिकारों में हम असमान होंगे।

समाजवादी विचारधारा के संदर्भ में भारत के संविधान को साम्यवाद तथा स्वेच्छाचारी व्यक्तिवाद की अतियों के मध्य एक समझौते के रूप में कहा जा सकता है। संविधान में उल्लिखित सामाजिक, आर्थिक न्याय के प्रावधानों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान उदारवादी प्रवृत्ति का होने के बावजूद शासन चलाने हेतु शक्ति एवं संस्थाओं की व्यवस्था मात्र नहीं है। संविधान निर्माताओं ने एक नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माण के लिए एक दिशा उपलब्ध कराने हेतु कुछ लक्ष्य निर्धारित करने का प्रयास किया है। यह सामाजिक व्यवस्था न केवल लोकतांत्रिक होगी बल्कि समान एवं न्याय पूर्ण होगी। इसमें एक ऐसे लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की आशा की गई थी, जिसके अंतर्गत राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र शामिल है। यह बात अलग है कि व्यावसायिक राजनीति के कारण पिछले 73 वर्षों के इतिहास में राष्ट्र सामाजिक न्याय की परिकल्पना को पूरी तरह से प्राप्त नहीं कर सका है।

संदर्भः

1 काश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, (2012)

2 सईद, एस एम, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, (2007)

3 त्रिवेदी, आर एन, और राय, एम पी, भारतीय सरकार एवं राजनीति, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, (2009)

4 जैन, पुखराज, और फड़िया, बी एल, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, (2001)

5 नारंग, ए एस, भारतीय शासन एवं राजनीति, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, (2008)

6 बसु, डी डी, भारत का संविधान एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस वधवा, नागपुर, (2012)

7 चौधरी, बी एन, और कुमार, युवराज, भारतीय शासन एवं राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वान, (2011)